गुरु नानक जी की बाणी मे तीर्थ की अवधारणा

- डॉ. रुचिरा ढींगरा

गुरु नानक देव जी के अनुसार भक्ति बिना भाग्य के संभव नहीं है। यह एक आंतरिक मानसिक स्थिति है जिसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को निरंतर प्रयत्न करना पड़ता है। गुरु नानक देव जी ने अपनी 'बाणी' में विभिन्न कर्मकांडों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों का विरोध करते हुए गुरु भक्ति और हरिनाम स्मरण पर बल दिया है। उनका मानना है कि गुरु सबसे बड़ा तीर्थ है जिसके सानिध्य में व्यक्ति सत्मार्ग पर चलता हुआ ईश्वर की प्राप्ति करता है। आत्माभिमान, पाखंड, आडंबर से कलुषित मन को गुरु सानिध्य व हरि नाम स्मरण से पवित्र, निर्मल किया जा सकता है। सच्चे मन से हरि स्मरण करना तीर्थ स्नान सदृश मुक्ति दायक है। गुरु नानक देव जी का मत है कि ईश्वर ने तन मन धन परहित सेवा के लिए दिए हैं। मन की विनम्नता और संतोष मनुष्य को प्रभु भक्ति की ओर प्रेरित करने में सहायक होते हैं। वे मानते थे कि प्रभु समभाव से सबको देखते हैं। जिस प्राणी के हृदय में प्रभु की लगन लग जाती है वे उसे अपनी शरण में ले लेते हैं। संसार का प्रत्येक जीव उस परमपिता की संतान है अतः मनुष्य को जीवमात्र से स्नेह करना चाहिए।

'तरन्ति जना दुःखेभ्यौथेस्तानि तीर्थानि ' समस्त क्लेशों से मुक्त कराने वाले तीर्थ की परिकल्पना अत्यंत प्राचीन है। इसका साक्ष्य वेदों, पुराणों, महाभारत आदि में उल्लिखित मिलती है। वेदों में तप और यज्ञ के अर्थ में प्रयुक्त तीर्थ शब्द ऋषि मुनियों द्वारा सम्पन्न यज्ञ धूम से सुवासित पवित्र नदियों के ऐसे संगम स्थल का वाचक है जहाँ व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रयोजनों की सिद्धि होती है। पुराण (पद्म पुराण) में संतान के लिए अभिभावकों, पतिव्रता नारी के लिए पति तथा योगी भौतिकता से विरत ऋषि गणों के पवित्र आश्रमों, नदियों, समुद्रादि से संयुक्त स्थलों को तीर्थ की संज्ञा दी गई है। महाभारत में अनुसूया तीर्थ, सुतीक्ष्ण तीर्थ, अगस्याश्रम तीर्थ को अत्रि पत्नी अनुसूया, शरभंग एवं अगस्त्य ऋषि के तपस्वरुप निर्मित माना गया है। युधिष्ठिर ने विदुर महाराज को तीर्थ रुप माना है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से तीर्थ तीर्थ शब्दों के योग से निर्मित है जिसका अर्थ है-जहाँ की यात्रा समस्त कलुष का हरण कर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रयोजनों को सिद्ध करती है। इनमें से अर्थ तीर्थाटन, धार्मिक कृत्यों में व्यय हो जाने पर भी शेष तीन मानव जीवन के लिए सुदृढ़ सम्बल सिद्ध होते हैं।

गुरुदेव नानक जी भारतीय सन्त परंपरा के स्वर्णिम हस्ताक्षर हैं। उनके सामयिक युग में भी तीर्थों के प्रति आस्था थी। नानक जी ने 68 तीर्थों की उपस्थिति स्वीकार करते हुए भी व्यर्थ के कर्मकांडों की अपेक्षा गुरु प्रदत्त ज्ञान को सर्वोपरि तथा हरि नाम स्मरण को तीर्थों सदृश महत्त्वपूर्ण माना है।

"अठसठि तीरथ हरिनामु है, किलविख काटणहारा। " (1) नानक देव जी गुरु को तीर्थ सदृश पूज्य मानते हैं-

"नानक गुर समानि तीरथु नहीं कोई साचे गुर गोपाला"। (2) उनके मतानुसार तीर्थाटन द्वारा आत्म या ब्रह्म की प्राप्ति का प्रयास निरर्थक है क्योंकि आत्म (ब्रह्म) तो घट घट वासी है। पंचविकारों काम, क्रोध,

लोभ, मोह, मत्सर से मुक्ति तीर्थाटन की अपेक्षा अधिक अनिवार्य है और उसके लिए तीर्थ यात्रा पर जाने की अपेक्षा गुरु अथवा हरिनाम स्मरण उपयोगी है। गुरु नानक देव जी ने तीर्थ में स्नान के वास्तविक स्वरूप को भी स्पष्ट करते हुए कहा कि गुरु दर्शन अड़सठ तीर्थों में स्नान करने से अधिक फलदायक है। उन्होंने गुरु की समता समुद्र व उनकी शिक्षा को नदी मानते हुए जीव को उसमें स्नान अर्थात् उसका अनुसरण करने के लिए प्रबोध किया है। धर्म के बाह्य प्रपंचनात्मक कर्मकांडों का विरोध करते हुए कबीरदास ने भी तीर्थ, व्रत, मूर्ति पूजा, जप छाप तिलकादि का तीव्र विरोध किया तथा गुरु को गोबिंद से मिलाने का माध्यम मान उसके दर्शन, वन्दन पर बल दिया। हरि गुणगान करने वाले को सत्यवादी होना चाहिए।नानक देव जी ने मनुष्य को सत्य रुपी तीर्थ में अवगाहन करने व सत्संगति में जीवन व्यतीत करने की सम्मति दी।

" सचु तीरथि नावहु हरि गुण गावहु।" (3)

उन्होंने हरि रुपी मित्र की संगति को भी पूर्ण स्नान स्वीकार किया है।

"संगति मीत मिलापु पूरा नावणो।" (4)

गुरु नानकदेव जी के कथनानुसार तीर्थ स्नान से मानसिक शुद्धता, अहंकार दंभ पाखंड से मुक्ति मिले तभी उसकी उपयोगिता है अन्यथा लोक दृष्टि में धर्मात्मा और पुण्यात्मा समझा जाने वाला व्यक्ति मन के कालुष्य के कारण अशुद्ध ही रहता है। तीर्थाटन, तीर्थ स्नान, गुरु व हरिस्मरण, सत्यवादिता, सत्संगति के साथ ही नानकदेव जी ने मनुष्य में जीव मात्र के प्रति मनसा-वाचा-कर्मणा, कायिक-आर्थिक, निष्काम सेवा भाव से सुख पहुँचाने को भी उत्तम गुण माना है। सेवा का कोशीय अर्थ है परिचर्या, उपासना, भक्ति, आराधना, उपचार, सेवन इत्यादि। गुरु नानकदेव जी का अभिमत है कि गुरु सेवा भक्त को आवागमन के चक्र से मुक्त करती है तथा परमपद प्रदान करती है। यह उल्लेख्य है कि नानक देव जी की कथनी और करनी में कोई भेद नहीं था। उन्होंने पूर्ण समर्पण से गुरु सेवा करके परमपद प्राप्त किया। मानापमान रहित हो स्वयं को महचानने की सामर्थ्य प्राप्त की थी। अहर्निश गुरु चरणों की सेवा में संलग्न भक्त को हरि की भक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है क्योंकि गुरु के सेवक, भगवतानुग्रह के पात्र होते हैं। उन्हें यम का भय नहीं सताता और वे मुक्ति/मोक्ष को प्राप्त करते हैं। सेवा बिना योद्धा, योगी, संन्यासी भी फल का उपभोक्ता नहीं हो सकता। गुरु नानक देव जी ने स्पष्ट कर दिया है कि गुरु एवं प्रभु सेवा का मार्ग दुस्साध्य होता है। स्वयं को प्रभु का सेवक मानने वाले नानक देव जी ने अपना संपूर्ण जीवन गुरु सेवा और नाम प्रभु सेवा में व्यतीत किया। यह उनके व्यक्तित्व के निर्मायक तत्व थे।

गुरु नानक देव जी की तीर्थ की अवधारणा में श्रम को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। वे स्वयं परिश्रमी और ईमानदार थे और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित-प्रोत्साहित करते थे। वे निर्वाण प्राप्ति के लिए भी अथक परिश्रम को अनिवार्य मानते थे। उनके मतानुसार ईश्वर दयालु है और उसकी अनंत अपार कृपा के सब भागी हैं। असंभव को संभव कर देने वाली भगवत कृपा या अनुग्रह का गुणगान सभी भक्तों ने किया

है। मानवीय दुर्गुणों, दुर्बलता से मुक्ति और निर्वाण की प्राप्ति भी भगवत दया से ही संभव है अतः मनुष्य को पर पीड़ा से दयार्द्र होकर पीड़ित की सहायता करने का भरसक प्रयास करना चाहिए।

गुरु नानक जी अत्यंत दयालु थे। उनके अनुसार सेवा का भाव दान से जुड़ता है। ऐसा व्यक्ति निष्काम भाव से श्रद्धा और दयावश अन्न, वस्त्रादि जरूरतमंद लोगों को देता है। वस्तुतः भगवान से बढ़कर दाता और प्राणी मात्र से बढ़कर याचक कोई है ही नहीं। गुरु राम नाम का दान देकर अपने शिष्य का जीवन सफल बनाते हैं। गुरु से प्राप्त दान ही शिष्य को परमात्मा से दान पाने का अधिकारी बनाता है। यह दान अपरिमित है. कभी समाप्त नहीं होता। प्रभु गुरु के माध्यम से अपना दान प्राणियों में वितरित करता है इसलिए गुरु को गोबिंद के समकक्ष पूजनीय मानना चाहिए। नानक देव जी के कथनानुसार समृद्ध और सनाढ्य व्यक्ति भी दान देते हैं किंतु अपने किए का अभिमान भी करते हैं। कुछ व्यक्ति समय पर सहायता अवश्य करते हैं किंतु निश्चित अवधि के पश्चात दी गई राशि वापस मांगने लगते हैं। गुरु द्वारा प्राप्त हरि नाम के ज्ञान रूपी दान को कभी लौटाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। निर्व्याज, मुक्त हस्त प्राप्त यह दान अव्यय और मुक्ति का प्रदाता होता है।

सामान्यतः नेत्रों से प्राप्त बोध दर्शन होता है, किंतु नानक देव जी ने इसे ईश्वरीय साक्षात्कार के अर्थ में प्रयुक्त किया है। गुरु द्वारा हरि नाम का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त प्राणी उस ईश्वर के दर्शन के लिए लालायित हो जाता है।

"बिनु दरसन कैसे जीवउ मेरी माई।

हरि बिनु जीअरा रहि न सकै खिनु सतिगुरि बूझ बुझाई।" (5)

निर्गुणोपासक संतों कबीर, रहीम, दादू आदि के सदृश ही मीरा, सूर, तुलसी इत्यादि भक्त कवियों ने भी ईश्वर दर्शन की उत्कट इच्छा को व्यक्त किया है और उसके लिए निराभिमानता, सर्वस्व समर्पण तथा गुरु कृपा को अपरिहार्य माना है। गुरु के मार्ग दर्शन के बिना ईश्वर से साक्षात्कार असंभव है।

भारतीय संत मानवतावादी थे। उनकी दृष्टि में ऊँच-नीच जाति-कुजाति, अमीर-गरीब सब बराबर थे। गुरु नानक देव जी के लिए तो मानवता ही परम धर्म था। सबका हित चिंतन उनका कर्म और जीवन लक्ष्य था। मंदिर-मस्जिद में अंधश्रद्धा रखने वाले हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के कर्मकांडों का विरोध करने वाले कबीर की भांति नानक जी ने भी हिंदुओं के उत्थान के साथ ही उन्हें यह समझाया कि सूर्य देव को अर्घ देने से उनके पूर्वजों तक वह नहीं पहुँच सकता। मक्का के काजियों को भी उन्होंने बताया कि कण-कण में निवास करने वाला ईश्वर/खुदा केवल उनकी मस्जिद में ही नहीं रहता। उनके निधनोपरांत हिंदू और मुस्लिमों में उनके अंतिम संस्कार को लेकर उठने वाले विवाद का अंत भी काशी छोड़कर मगर में प्राण त्यागने वाले कबीर की भांति ही हुआ। गुरु नानक देव जी का अंतिम संस्कार दोनों धर्मानुयायी अपने अनुसार करना चाहते थे।निर्णय हुआ कि दोनों धर्म वाले उनके पार्थिव शरीर के साथ अपने श्रद्धा सुमन

रख दें। जिसके फूल वैसे ही रहेंगे वह अपने रीति रिवाज के अनुसार संस्कार कर सकेगा। जब नानक जी के ऊपर से चादर उठाई गई तो वहाँ देह नहीं थी। गुरु नानक देव जी ने की निष्क्रियता अथवा अकर्मण्यता का पक्ष कभी नहीं लिया तथापि वे अपरिमित इच्छाओं का दमन अनिवार्य मानते थे। उनके अनुसार तभी परमात्मा के निर्मल परम पद को व्यक्ति पहचान सकता है। कबीर दास ने भी नानकदेव जी सदृश अपनी इच्छाओं का दमन किया था।

"हम घर जाला आपनां, लिए मुराड़ा हाथि।

अब घर जालों तास का, जो चलै हमारे साथि।" (6)

नानक देव जी को कामनाजित ईश्वरानुरक्त व्यक्ति ही प्रिय था।

उनके अनुसार-

"सो जनु ऐसा मैं मनि भावे।

आपु मारि अपरंपरि राता गुर की कार कमावै।" (7)

सीमाहीन इच्छाएँ वासनाओं को जन्म देती हैं जिनसे पंच विकार-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि उत्पन्न होते हैं और मनुष्य कुकर्मों में प्रवृत्त होता हैअतः इनके मूल इच्छा का दमन आवश्यक है। अहंकार अथवा हाउमै को गुरु नानक ने पाँच विकारों में सर्वाधिक प्रचंड और विनाशकारी माना है। इसके वशीभूत जड़-चेतन, तीनो लोक तथा त्रिदेव भी संयम खोकर कर्म करते हैं। ईश्वर की प्राप्ति के लिए इससे त्राण पाना अति आवश्यक होता है। अहंकार भी नाना प्रकार का संभव है। साधना और संयम में महारत प्राप्त योगियों सन्यासियों ब्रह्मचारिओं में अपनी आत्मशक्ति का अहंकार हो जाता है। गुरु नानक देव की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण कार्य भी अहंकार पूरित होने पर निम्न और निंदनीय हो जाता है। अध्ययन मनन, उच्च कोटि की मानसिकता और विज्ञता प्राप्त व्यक्ति भी अहंकार ग्रस्त होने पर अपनी उत्कृष्टता से वंचित हो जाता है। गुरु नानक देव की दृष्टि में उसका सारा अध्ययन चिंतन मनन और लेखन उपेक्षणीय होता है। कर्मकाडियों, तांत्रिकों, नागा मौनियों आदि द्वारा अपनाए गए विभिन्न आचार व्यवहार जन सामान्य को भ्रमित करने और अपने द्वारा फैलाए रहस्यालोक से अभिभूत करने के स्वांग मात्र होते हैं। दुर्बल आत्मशक्ति वाले व्यक्ति उनसे प्रभावित होते हैं। गुरु नानक देव इन्हें उनका अभिमान प्रदर्शन मानते हैं और उनसे बचने का सत्परामर्श देते हैं। उनके मतानुसार सतगुरु की शरण में जाकर ही प्राणी उनसे बच सकता है।

कुलीनता का अहम् सांप्रदायिक भेदभाव का कारण बनता है। नानक देव जी जाति पाति को नहीं मानते थे। वे स्वयं को अछूतों में परिगणित कर संतुष्ट होते थे। सनाढ्य समृद्ध व्यक्तियों को अपनी संपन्नता का गर्व होता है। वे निर्धनों पर अत्याचार करना अपना अधिकार समझने लगते हैं। उनके जीवन का ध्येय ही उचितानुचित रीति से धन अर्जित करना और उसका अपव्यय करना होता है।

आवश्यकता से अधिक धनी व्यक्तियों में मदिरा सेवन, वेश्यावृति आदि कुव्यसन होते हैं क्योंकि उन्हें अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्धनों की भांति हाड़ तोड़ मेहनत नहीं करनी पड़ती। आर्थिक संपन्नता के बल पर वे अयोग्य होते हुए भी समाज में प्रतिष्ठित पद प्राप्त कर लेते हैं। गुरु नानक देव के मतानुसार परिस्थितिवश धनसंपदा खो जाने पर इनकी दशा अत्यंत दयनीय हो जाती है

अतः इन्हें समय रहते चेत जाना चाहिए। परिवार में लिप्त प्राणी सांसारिक पारिवारिक जनों को अपना सहोदर मान अन्य लोगों के प्रति उपेक्षा की दृष्टि अपनाता है. किंतु नानक देव जी मनुष्य को चेताते हैं कि जन्म और मृत्यु दोनों के समय व्यक्ति अकेला होता है। अपने कहे जाने वाले व्यक्ति भी मृतक से शीघ्रतातिशीघ्र छुटकारा पाने के लिए प्रयासरत होते हैं। संसार में रहते हुए व्यक्ति जिन वस्तुओं का अर्जन-संग्रह करता है वह सब यहीं रह जाता हैं। नानक देव जी ने राज, माल, रूप, जाति और यौवन की गणना ऐसे पाँच ठगों से की है जो मनुष्य का सर्वस्व हरण कर लेते हैं।

"राजु मालु रुपु जाति जोबनु पंजे ठग।

एनी ठगीं जगु ठगिआ किनै न रखी लज।" (8)

इनके वशीभूत हुआ व्यक्ति कभी उबर नहीं पाता। राम नाम का स्मरण जो मनुष्य के जीवन का प्रधान कार्य होना चाहिए उसकी दृष्टि में सर्वथा गौण हो जाता है। सद्गुरु ही हऊमै के इस विनाशकारी रूप से भक्तों को बचा सकते हैं अतः उसे शीघ्र ही उनकी शरण में जाना चाहिए। निराभिमानी व्यक्ति अपने जीवन को सफल बनाने के साथ ही आपने संपर्कागत व्यक्तियों के जीवन को भी सुधार लेता है। जब मनुष्य पंच विकारों से मन को हटा कर भगवत भक्ति में लगा देता है तो उसे किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु की इच्छा नहीं रहती। केवल प्रभु की स्मृति में वह लिप्त रहता है। नानक देव जी भौतिक तत्वों से मुक्त हो ईश्वर की स्मृति में इस प्रकार लीन रहते थे कि उन्हें खाने-पीने की भी सुध नहीं रहती थी। परिवार जन उन्हें बीमार समझ वैद्य को बुलवाते थे जिनकी दवा को पीड़ा वर्धक बताकर नानक जी कहते हैं-

"वैद न भोले दारु लाई

दरदु होवे दुखु रहै सरीर। ऐसा दारु लगै न बीर।" (9)

मीराबाई भी कृष्ण प्रेम में पानां ज्यू पीली पड़ी रे, लोग कहें पिंड रोग 'तथा संत रविदास को प्रभु प्रेम की पीड़ा से मुक्त होने के लिए राम रसायन रुपी औषधि की आवश्यकता थी 'राम रसायन जउ मिलहिं, तठ हरै हमारी पीर'। गुरु नानक देव जी का युग पाखंड और कर्मकांडों की प्रबलता से विभिन्न मत मतान्तरों के मध्य विभेद और संघर्ष का युग था। गुरु नानक देव जी किसी धार्मिक संप्रदाय से नहीं जुड़े। उनकी दृष्टि में सभी धर्म और उनके अनुयायी एक समान थे। उन्होंने उन्हें अपने-अपने विश्वासानुसार धर्म का अनुपालन करने की प्रेरणा दी। कबीर के समान उन्होंने हिंदुओं-मुसलमानों दोनों का उनके धार्मिक अंधविश्वासों के लिए विरोध किया। अपवित्र मन से पड़ी गई नमाज खुदरा को कभी स्वीकार नहीं हो

सकती उसी प्रकार हिंदुओं द्वारा श्रद्ध के नाम पर किया जाने वाला दान मृतकों तक नहीं पहुँच सकता। स्त्री को माया का प्रतिरूप, भगवत भक्ति में बाधक मान उससे दूर रहने की धारणा भी नानक देव जी को स्वीकार नहीं थी। उनके अनुसार संत महात्माओं, पीरों पैगंबरों, विद्वानों और राजाओं की जननी नारी का अपमान करना महान पाप कर्म है। उन्होंने समाज में उसे उच्च और सम्मानीय पद प्रदान किए जाने की प्रेरणा दी। मुगल शासकों के काल में पर्दा प्रथा, अपहरण, कन्या भ्रूण हत्या, बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि के चलते नारी का जीवन अत्यंत विषाक्त था जिससे गुरु नानक देव जी भी व्यथित थे। अपने सामयिक ब्राह्मण वर्ग के कर्मकांडों जनेऊ, तिलक का भी उन्होंने खंडन किया और संतोष, सत्य, दया इत्यादि गुणों को अपनाने की सम्मति दी। हठयोग द्वारा परमेश्वर को अपने अनुकूल करने के स्थान पर लोभ, मोह, अहंकार आदि दुर्गुणों को बलपूर्वक त्याग कर सात्विक वृत्ति से युक्त होकर ईश्वर आराधना करने की सम्मति दी। गुरु नानक देव जी के मतानुसार जप, माला, तिलक, जनेऊ, शरीर पर भस्म लगाकर, सिर मुंडवाकर, श्रृंगी बजाकर ईश्वर का सानिध्य प्राप्त करना असंभव है। कुरान नमाज पढ़ने किंतु गौ हत्या करने से ईश्वर कैसे प्रसन्न हो सकता है? सतगुरु के द्वारा दिया गया मार्गदर्शन और नाम स्मरण रुपी ज्ञान से ही आत्मिक शुद्धता संभव है। समाज में व्याप्त अनाचार के लिए उत्तरदायी स्वार्थ पूर्ति में संलग्न हिंदू-मुस्लिम वाममार्गी आदि सभी वर्गों की नानक जी ने घोर विगहर्णा की है। उनकी 'बाणी' इस दृष्टि से मानव के उद्धार का सशक्त माध्यम है। सदाचार और मानसिक शांति के लिए प्राणी का विनम्र होना अनिवार्य है। कटुभाषी किसी को भी प्रिय नहीं हो सकता। नानक देव जी की विनम्रता के कारण व्यक्ति निशंक होकर उनसे अपनी समस्यायें निवेदित करते थे। एक महान संत के रूप में उनकी लोकप्रियता से वे आक्रान्त अथवा संकुचित नहीं होते थे।

ध्यातव्य है कि गुरु नानक देव जी स्वयं गृहस्थ थे और उन्होंने मनुष्य के लिए गृहस्थ धर्म को वर्जित नहीं किया। यह अवश्य है कि माता पिता भाई बहन पति पत्नी पुत्र आदि जितने भी संभावित संबंध हैं सभी नश्वर हैं अतः उनमें अत्याधिक लिप्तता के कारण गुरु का विस्मरण सर्वथा अनुचित है। गुरु निर्देशन बिना ईश्वर प्राप्ति व मुक्ति असंभव है। गुरु नानक देव जी की बाणी में तीर्थ की यही सम्यक परिकल्पना मिलती है जिसका पठन पाठन और अनुगमन प्राणी को तीर्थ यात्रा के पुण्य का प्रदाता है।

सन्दर्भः

1. जयराम मित्र, नानक बाणी, सं 2018, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 585

2. वही, पृष्ठ 317

3. वही, पृष्ठ 631

4.वही, पृष्ठ 420

5.वही, पृष्ठ 476

6. सीताराम चतुर्वेदी, कबीर संग्रह, प्रयाग हिंदी साहित्य सम्मेलन,1971, पूर्वोक, पृष्ठ 83

7. जयराम मिश्र, नानक बाणी, सं.2018, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 695

8. वही, पृष्ठ 768

9. वही, पृष्ठ 750